इक्कीसवीं सदी की हिंदी साहित्य में दलित विमर्श : एक पैनी दृष्टि

✍ **डॉ. चैत्रा एस.**
सहायक प्राध्यापिका एवं
विभागाध्यक्षा, हिंदी विभाग,
जे.एस.एस. महिला कॉलेज, मैसूरु

पुरोवाक्

दलित शब्द का अर्थ है जिसका दलन या उत्पीड़न किया गया हो। दलित शब्द का अर्थ पर प्रकाश डालते हुए डॉ. आरती झा ने कहा है—"दलित शब्द का सामान्य अर्थ है—दरिद्र और उत्पीड़न। इसका अर्थ दबा, कुचला, अपमानित और प्रताड़ित प्राणी होता है। आज 'दलित' का अर्थ अनुसूचित जातियों और जनजातियों के रूढ़ अर्थ में होने लगा है। जिसका दमन हुआ हो, दबाया गया हो, जो उत्पीड़न, शोषित, सताया, गिराया, उपेक्षित, घृणित, रौंदा, मसला, कुचला, विनष्ट, मर्दित, पस्त, हत्साहित और वंचित हो वह दलित है। दलित किसी जाति व धर्म का कोई शब्द नहीं है। वह कोई भी हो सकता है। शुद्र हो, स्त्री हो या अन्य कोई भी हो।"[1]

महाराष्ट्र में सन् 1970 के दशक में दलित राजनीतिक दल ने 'दलित शब्द का सबसे अधिक प्रचार किया। तब से दलित शब्द का महत्व बढ़ गया। लोग दलित शब्द को केवल अनुसूचित जन जातियों तक सीमित करते हैं, परंतु इनका यह विचार तर्क संगत नहीं है। इस संबंध में डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी का कहना है—"दलित एक संवेदन है विचार, जिसका अर्थ दबाया गया मनुष्य, किसी भी जाति, वर्ण, धर्म, मन एवं भौगोलिक क्षेत्र का हो दलित है।"[2] आगे चलकर दलित शब्द को लेकर कई विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से राय प्रकट की है। कँवल भारती ने अपना विचार प्रकट करते हुए दलित शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है। उनके अनुसार—"दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता नियम लागू किया गया है। जिसे कठोर गंदे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया। जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया, सिर्फ वही दलित है।" दलित सर्वहारा जैसा पीड़ित है। वह जीवन भर अवहेलित जीवन जीता है। पर दलित और सर्वहारा में थोड़ा बहुत अंतर है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए दलित साहित्यकार मोहन दास नैमिशराय का वक्तव्य उल्लेखनीय है। इनके विचारों में—"दलित और सर्वहारा इन दो शब्दों में पर्याप्त भेद है। दलित की व्याप्ति अधिक है तो सर्वहारा की सीमित। दलित के अंतर्गत सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक शोषण का अंतर्भाव होता है तो सर्वहारा केवल आर्थिक शोषण तक सीमित है।"[3] तब दलितों को आजादी नहीं थी। उन्हें गुलामी में

जीवन बिताना पड़ता था। सवर्ण समाज के लोगों के शोषण के परिणामस्वरूप इन्हें हवा में सांस लेना भी मुश्किल था। गांव में भंगी, चमारों की सामाजिक स्थिति कुत्तों से भी गयी गुजरी थी। नीच जाति की औरतों को कुएँ से पानी तक भरने नहीं दिया जाता था। गाँव में ऊँच-नीच का भेदभाव तीव्र दिखाई देता था। डोम, भंगी, चमार जैसी जाति में जन्म लेना पाप समझा जा रहा था। जगदीश चंद्र ने 'धरती धन न अपना' उपन्यास में बड़ी बारीकी से इसका वर्णन किया है। पैसा होने के बावजूद चमार काली चाची के लिए पाव भर दूध नहीं जुटा पाया है। चमारों को दूध बेचना चौधरियों के शान के खिलाफ है।

तत्कालीन भारत में जाति व्यवस्था का अमानवीय रूप समाज में भेद-भाव उत्पन्न करने के साथ-साथ अनेक प्रतिभाओं के विनाश का कारण बनना था। जातिवाद, भयावह स्थानियों से समाज में प्रेम और भाईचारे के बदले घृणा और अशांति हमेशा बनी रहती थी।

दलित साहित्य के प्रेरणा स्रोत

भारतीय समाज में प्रधानतः हिंदू समाज है। छुआछूत की भावना मुख्यतः हिंदुओं में रही है। चार वर्ण की स्थापना तो समाज को जोड़ने हेतु की गई। परंतु कालक्रम में वह बांटने में लग गई। मध्यकाल में निर्गुण शाखा के अनेक कवि रैदास, पलटू, कबीर आदि ने वर्ण व्यवस्था और जाति प्रथा पर गंभीर चोट की है। जब उन्हें उपासना का अधिकार न रहा, प्रवेशाधिकार न रहा, तो ईश्वर को मन के भीतर ढूंढ लिया। पा भी लिया। रैदास तो कहते हैं—

"का मथरा का द्वारका, का कासी हरद्वार।
रैदास खोजा दिल अपना, तऊ मिलिया दलदार।"

गहरे अतीत में जायें तो देखेंगे कि सिद्धनाथ कवि इस भेदकारी परंपरा के विरुद्ध खड़े हुए थे। चौरासी सिद्धों में साठ तो शूद्र थे। वैसे ही सिद्धों में अनेक इसी वर्ण के थे। इनकी प्रखर वाणी ने पहली बार समाज में वर्णभेद के प्रति चेतना जगाई। इनके तर्क और समता के उदाहरण समाज को इस नीति में बदलाव के प्रति जागरुक कर सके। आध्यात्मिक भाव को भौतिक उपलब्धि से ऊपर महत्व देने के कारण वे सबको स्वीकार्य हो सके। भेदवाली अवैज्ञानिक भावना के प्रति दलितों को जागृति की प्रेरणा मिली।

प्रत्यक्ष रूप में स्वामी दयानन्द इस दर्द को समझकर उन्हें वेदों का अधिकार दिया, यज्ञादि का अधिकार दिया एवं जनेऊ धारण की स्वीकृति दी। उनमें दलितों के प्रति गहरी सचेतनता स्पष्ट दिखी। माता प्रसाद लिखते हैं: संतों के विचारों से दलित जाति को प्रेरणा मिली।

उनमें आत्मविश्वास जागृत हुआ। उसी तरह गांधीजी ने शूत्रों को 'हरिजन' संज्ञा देकर अपनाया। गुलामी के संघर्ष में इनका आंतरिक समर्थन लिया। गांधी की मंशा में राजनैतिक षडयंत्र

ढूंढना, सत्य और अहिंसा के पुजारी के साथ अन्याय होगा। हरिजन उद्धार का उनका अभियान आंदोलन काफी आंतरिक था। इसके बाद इस दिशा में अम्बेडकर की विचारधारा ने बड़े समाज को जगाया। संविधान में आरक्षण का मुद्दा जोड़कर हरिजनों के अन्याय पर मलहम लगाया गया। इस प्रकार एक लंबे समय बाद कानून सम्मत आंदोलन और सकारात्मक सचेतनता भरी। दलित साहित्य लिखे जाने से पहले दलितों के प्रति संवेदना और उनमें चेतना उत्पन्न करने का काम भारत की विविध भाषाओं के साहित्यकारों ने अपनी-अपनी साहित्यिक कृतियों के माध्यम से थोड़ा बहुत किया था। लेकिन यह कहना समीचीन होगा कि वात्सव में दलितों में चेतना उत्पन्न करना और दलित साहित्य की रचना करने में प्रेरणा प्रदान करने वालों में जिनकी प्रमुख देन थी उनमें प्रमुख हैं गौतम बुद्ध, संत कवि कबीर, रैदास एवं दलितों के उद्धार कर्ता माने जाने वाले भारत रत्न अम्बेडकर।

हिंदी साहित्य में दलित विमर्श

इक्कीसवीं सदी के दलित-विमर्श के अंतर्गत दलित वर्ग अपनी पीड़ाओं की अभिव्यक्ति करता हुआ उस विषम सामाजिक व्यवस्था का विरोध कर रहा है जिसने उसे सहस्राब्दियों तक गुलाम बनाकर नारकीय जीवन जीने को विवश किया है। हिंदी साहित्य की लगभग सभी विधाओं में दलित साहित्य की उपस्थिति ने इस विषय की आवश्यकता और महत्ता को प्रमाणित किया है। इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानियों में दलित-विमर्श को लेकर काफी महत्वपूर्ण तथा गंभीर लेखन हुआ है। दलित लेखकों को अपने जीवनानुभवों तथा समस्याओं को अभिव्यक्त करने के लिए कहानी जैसी विधा अपेक्षाकृत अधिक सार्थक और सशक्त प्रतीत हुई। ये कहानियाँ हमारे समाज को अपने गिरेबान में झांकने को विवश करती है। आज भी जाति और वर्ण के आधार पर मनुष्य, मनुष्य से भेदभाव कर रहा है। आज दलित वर्ग अपने अधिकारों के प्रति जाग्रत हुआ है। दलित विमर्श के बैनर तले अनेक कहानियां दलित जीवन संबंधी अनेकानेक समस्याओं को न केवल उठाती हैं अपितु उनके समाधान के प्रति भी संकल्पबद्ध हैं। हिंदी की अनेक पत्र-पत्रिकाओं के विशेषांकों ने इस विमर्श को मंच प्रदान किया है। आज दलित कहानी के परिदृश्य में अनेक कहानीकार उभर कर आये हैं जिन्होंने अपने लेखन के माध्यम से दलित अधिकारों की बात की है। ओमप्रकाश वाल्मीकि, श्यौराज सिंह बेचैन, मोहनदास नैमिशराय, सूरजपाल चौहान, जयप्रकाश कर्दम, सुशील टाकभौरे, राजेन्द्र बड़गूजर आदि अनेक दलित रचनाकार अपनी कहानियों में दलितों से संबंधित मुद्दों को उठाते हैं।

भारत व्ष में दलित चेतना के प्रचार-प्रसार में हिंदी दलित साहित्यकारों का सबसे अधिक योगदान देखने को मिलता है। इस दिशा में दलित साहित्यकारों के अलावा शुरू से कुछ गैर दलित

साहित्यकारों ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। पर गैर दलित साहित्यकारोरं के द्वारार किये गये ऐसे प्रयास दलित साहित्यकारों द्वारा नकारात्मक दृष्टि से देखे जाते हैं। दलित गैर दलित साहित्यकारों की रचनाओं के मूलभूत अंतर स्पष्ट करते हुए ओम प्रकाश बाल्मीकि ने कहा है—

"दलित जीवन और उनकी समस्याओं पर गैर दलित, जैसे प्रेमचंद, नागार्जुन, अमृतलाल नागरर, गिरिराज किशोर, जगदीश चन्द्र आदि ने लिखा है और दलित लेखक ओमप्रकाश बाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, श्यौराज सिंह बेचैन आदि ने भी लिखा है। किन्तु उनकी अन्तर्वस्तु में इनके द्वारा अर्जित और प्रतिष्ठित मूल्यों में औरर उस अनुभव की प्रक्रिया की व्याख्या में गहरा फर्क है। जाहिर है, इन मूल्यों की प्रकृति और प्रक्रिया में वर्णभेद अहम भूमिक अदा करता है। उनके अपने आग्रह और संस्कारिक मूल्य मान्यताएँ कृति की समग्रता में अपने निष्कर्ष स्थापित करती है, उसे प्रभावित करती हैं। यह सब एक विशिष्ट सतर्कता के रूप में प्रस्तुत होकर अपनी विशिष्टता रेखांकित करता है।"[4] अनुरूप विचार भी कंवल भारती में देखने को मिलता है। उनका कहना है—"हिंदी दलित साहित्य वह है जो दलित मुक्ति के सवालों पर पूरी तरह अम्बेडकरवादी है। सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में उसके सरोकार वे ही हैं जो अम्बेडकर थे। दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है, जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है। अपने जीवन संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला का नहीं, बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है। इसलिए कहना न होगा कि वास्तव में दलितों के द्वारा लिखा गया साहित्य हर दलित साहित्य की कोटि में आता है।"[5]

डॉ. एन.सिंह भी दलितों के द्वारा लिखे गये साहित्य को दलित साहित्य मानते हैं। अपनी पुस्तक 'दलित साहित्य के प्रतिमान' में उन्होंने इस पर अपना विचार स्पष्ट करते हुए कहा है—"दलित साहित्य दलित लेखकों द्वारा लिखित वह साहित्य है जो सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और मानसिक रूप से उत्पीड़ित लोगों की जीवन्त भाव में लिखा गया हो।"[6] डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी दलित साहित्यकारों में एक प्रतिभासंपन्न कवि और ललित निबंधकार है। अपनी दीर्घकालीन साहित्य यात्रा में सत्यप्रेमी जी ने काव्य ग्रंथों के अलावा कई ललित निबंध लिखे हैं। उन्होंने ललित निबंधकार विद्यानिवास मिश्र के निबंधों पर शोध किया था। एक दलित होने के नाते अपने जीवन की कटु अनुभूति और सामाजिक परिवेश ने उन्हें दलित साहित्य रचना की दिशा में उत्प्रेरित किया। फलतः उन्होंने दलित पर कई काव्य-कविताएँ लिखी। इसके अतिरिक्त हिंदी भाषा साहित्य में भी उनकी बहुत सी पुस्तकें प्रकाशित हुई। उनकी कृतियों में नयी कविता : नया मूल्यांकन, हिंदी और उसकी उपभाषाएँ अपनी शताब्दी में उपेक्षित, दलितों का चीखता अभाव, कविता : रोटी की भूख तक बहुचर्चित हैं। कवि

मलखान सिंह हिंदी दलित कविता के एक प्रमुख हस्ताक्षर हैं। भारतीय साहित्य में खासकर हिंदी साहित्य में दलित साहित्य को प्रतिष्ठा देने में मोहनदास नैमिशराय की भूमिका अत्यन्त सराहनी है। वे कवि, कथाकार, समीक्षक और नाट्यकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। एम.ए., बी.एड. शिक्षा प्राप्त करनेवाले नैमिशराय शुरू से पत्रकारिता से जुड़े थे। इसके साथ उन्होंने दलित होने के नाते दलित साहित्य की विविध विधाओं में कलम चलाई। आगे चलकर वे कई महत्त्वपूर्ण कृतियों के स्रष्टा बने। दलितों में जागृति उत्पन्न करने में उनकी कविताएँ ठोस भूमिका अदा करती हैं। सामाजिक सडांघ को उजागर करने वाले दलित लेखक ओमप्रकाश बाल्मीकि का दलित साहित्यकारों में एक स्वतंत्र स्थान है।

इस प्रकार हिंदी में दलित साहित्य का उद्भव और विकास होने लगा। डॉ. एन. सिंह ने कहा है—"हिंदी में दलित साहित्य की बाकायदा शुरूआत बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में हुई। इसकी प्रेरणा डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा तो ली ही महात्मा ज्योतिबा फूले का संघर्ष मार्क्स की क्रांति दृष्टि तथा मराठी का दलित साहित्य भी रहा।"

निष्कर्षतः इक्कीसवीं सदी की हिंदी दलित साहित्य अपने समकालीन परिवेश से संवेदनात्मक तथा सृजनात्मक स्तर पर गहराई से जुड़ी है तथा युग की सभी विडम्बनाओं से सरोकार रखती है। ये साहित्य बेहद पैनी दृष्टि के साथ उनका अध्ययन-विश्लेषण करती हैं। साहित्य की प्रयोजनीयता के अनुरूप वर्तमान हिंदी कहानी तत्परता से सामाजिक मुद्दों पर अपनी निष्पक्ष राय तथा विचार रखती है। बनावट और बुनावट से दूर ये कहानियाँ अपनी सामाजिक भूमिका को गंभीरता से लेते हुए सराहनीय भूमिका का निर्वहन करती हैं।

संदर्भ सूची

1. डॉ. आरती झा का 'भारत में दलित साहित्य एवं दलित चेतना' लेख, नव निकष (शोध विशेषांक), 2012, पृ.60
2. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी का लेख, सुमन लिपि, मासिक, बम्बई, 1944, पृ.5
3. उत्कृष्ट रविशंकर सोनकर का लेख 'दलित साहित्य : चिंतन का आधार' नव निकष शोध विशेषांक-2
4. डॉ. आरती झा का लेख 'भारत में दलित साहित्य एवं दलित चेतना' निकष (शोध विशेषांक) 2012, पृ. 61
5. कंवल भारती : दलित साहित्य की अवधारणा शीर्षक, लेख
6. डॉ. एन सिंह : दलित साहित्य के प्रतिमान, पृ.23